श्री रामागमन

ऐतिहासिक काव्य

30.11.2023

रचयिता

श्री रसिक लाल महतो

लेखक (रचयिता) की लिखित आज्ञा बिना पुस्तक के किसी अंश या सम्पूर्ण पुस्तक को कोई नहीं छपावें। पुस्तक को प्रकाशित करने या नहीं करने का किसी अंश को घटाने बढ़ाने या रद्दो बदल करने या नहीं करने का पूर्ण अधिकार लेखक ने अपने अधीन रखा है।

विविध पत्र पत्रिकाओं के सफल सम्पादक विख्यात कवि और पत्रकार श्री रामदयाल पाण्डेय की सम्मति :

भागलपुर जिले के भीष्मपुर ग्राम निवासी श्री रसिक लाल महतो का **"श्री रामागमन"** काव्य अवलोकित कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसमें अच्छे भावों का चयन हुआ है। इसके पाठ से जनता लाभान्वित होगी। गाँव की शैक्षिक और सांस्कृतिक सीमाओं के भीतर रहकर भी रसिक लाल जी ने जो उपलब्धि संभव की है उसके लिए मैं उन्हें हार्दिक बधाई देता हूँ। ग्राम वासियों में ऐसे साहित्य-सेवियों का होना सौभाग्य का विषय है। ऐसे लोगों की प्रतिभा और क्षमता का सदुपयोग इस प्रकार होना परम वाँछनीय है।

मैं आशा करता हूँ कि श्री रसिक लाल जी अपनी अधिकाधिक कृतियों से जनता को लाभान्वित करेंगे। मैं उनकी लेखनी तथा प्रतिभा और काव्यकला के उत्तरोत्तर विकास का अभिलाषी हूँ।

ह० राम दयाल पाण्डेय
२.६.१९५५

श्री रामागमन

(ऐतिहासिक खण्ड काव्य)

प्रकाशक – शभ्रांशु भूषण सिंह (अरविन्द)
ग्राम : भीखनपुर, पो० : कपसौना
थाना : शाहकुंड, जिला : भागलपुर
पिन कोड – ८१३१०८
वर्तमान पता–आदर्शनगर, सुलतानगंज
भागलपुर (८१३२१३)

सर्वाधिकार – प्रकाशक के अधीन।

प्रथम संस्करण – १९५४
द्वितीय संस्करण – २००१
कम्पोजिंग – पंकज कम्प्यूटर्स
सुलतानगंज, भागलपुर (बिहार)
मुद्रक – शंकर प्रिंटर्स, सुलतानगंज, भागलपुर
प्राप्ति स्थान – ज्ञान गुंजन
आदर्श नगर, सुलतानगंज,
भागलपुर, पिन कोड–८१३२१३
अन्य प्राप्ति स्थान– प्रभात रंजन
राजीव नगर, पटना।
धर्मवीर
ग्राम : भीखनपुर, कपसौना,
भागलपुर
मूल्य – ३० रूपये (तीस रूपये मात्र)

बहुभाषाविद् कवि श्री रसिकलाल महतो

तेरा आनन तेज से दीपित था।
तेरा ज्ञान कहीं नहीं सीमित था।
तुम नर नहीं नारायण थे,
सब विद्या में पारायण थे।

'दर्पण' काव्य से।
कवि गीतकार आदित्य

काव्य-दीप जो तुमने जलाया,
प्रकाश उसी का मैं फैलाता हूँ।
भीखनपुर हो जाये सुवासित,
मैं काव्य-पुष्प बिखराता हूँ।

'स्नेह सुरभि' काव्य संग्रह
कवि गीतकार आदित्य प्रकाश सिंह

श्री रामागमन
(ऐतिहासिक खण्ड काव्य)

पूजनीयां माताजी

मां ! दे दो ऐसा वरदान,
पूरा हो जाये मेरा अरमान।
जब तक सांस रहे तन में,
करूँ मैं तेरा गुनगान।

– शुभ्रांशु भूषण सिंह

आशीष दो मुझे तुम तातः
रखूँ आज मैं तेरी बात।
मानस का तेरा काव्य-खण्ड
आज भी है मेरे पास अखण्ड।
मैं वारि में वारि नहीं मिलाता हूँ
केवल प्रिंटों में तुम्हें जिलाता हूँ।

श्री रामागमन

(ऐतिहासिक खण्ड काव्य)

दो शब्द

मैं तीन भाईयों में सबसे छोटा हूँ। पिताजी श्री रसिकलाल महतो को परलोक सिधारे तैंतीस वर्ष (16.01.1968) पूरे हो गये। अब मैं किसी को कहूँ कि मेरे पिताजी स्व० रसिकलाल महतो कवि थे तो सहसा किसी को विश्वास नहीं होगा और आश्चर्य से मेरी ओर निहारेंगे लेकिन यह तथ्य उतना ही सत्य है जितना कि दिन में सूर्य का उगना और रात में तारों का उगना सत्य है। इसकी पुष्टि करने के लिए दो-चार ग्रामीण एवं कुछ ही रिश्तेदार बच गये हैं; जिन्हौंने पिताजी की अमर काव्यकृति श्री रामागमन को देखी हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रहने के कारण और प्रचार-प्रसार की कमी के कारण उक्त पुस्तक की जानकारी गांव-पड़ोस के कुछ ही सुधी जनों को हो सकी।

"श्री रामागमन" काव्य का प्रकाशन वर्ष 1954 में हुआ है। यह महज संयोग है कि वर्ष 1955 में आज के भीष्म पितामह महाकवि तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वर्त्तमान अध्यक्ष पंडित रामदयाल पाण्डेय पड़ोस के ग्राम खानपुरमाल में पुस्तकालय के वार्षिकोत्सव में आये थे तो पिताजी की काव्यकृति "श्री रामागमन" को देखकर अपनी संस्तुति अंकित कर दी थी। जिसे बाद में पुस्तक में चिपका दिया गया। वह आज भी मूलरूप में उपलब्ध पुस्तक में सुरक्षित है। पिताजी की बिखरी यादों को समेटने के क्रम में भारतीय साहित्य के कुछ पौराणिक एवं धार्मिक ग्रंथ हाथ लगे हैं। जिन्हें नीचे अंकित किया जाता है :-

1. ऋगवेद 2. यजुर्ववेद 3. अर्थवेद 4. सामवेद
5. मनुस्मुति 6. सत्यार्थ प्रकाश

इसी क्रम में लेखन से संबंधित कागजात भी मिले जिससे पता चलता है कि "श्री रामागमन" की समालोचना पाञ्चजन्य के 4 अक्टूबर 1955 के अंक में पृष्ठ 12 पर नया साहित्य शीर्षक में छपी है। साथ ही साथ यह भी ज्ञात होता है कि 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान रूस के तत्कालीन प्रधानमंत्री कोसीजिन ने जब समझौता कराने के लिये भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० लाल बहादुर शास्त्री को बुलाया गया था तो रूस जाने के पूर्व भारत के जन मानस को प्रधानमंत्री ने आश्वासन दिया था कि कोई भी निर्णय भारत की सरजमी पर ही होगा। इसी बिन्दु पर पिताजी ने एक कविता की रचना की तथा प्रधानमंत्री कार्यालय को भेजा था।

प्रधानमंत्री को लिखे पत्र का पावती पत्र की फोटो कॉपी

प्र धा न   मं त्री   स चि वा ल य
PRIME MINISTER'S SECRETARIAT

पत्र सं० २।६७।६६-हि०   नई दिल्ली-११,
New Delhi-11, the

8 JA...

प्रिय महोदय,

प्रधान मन्त्री जी के नाम आप का पत्र मिला । धन्यवाद ।

भवदीय,

(राज कृष्ण गोयल)
प्रधान मन्त्री जी के अतिरिक्त निजी सचिव

श्री रसिक लाल महतो,
ग्राम व पत्रालय खानपुर माल,
ज़िला भागलपुर, बिहार राज्य ।

सौनी
६-१-६६

एवं आकाशवाणी पटना द्वारा भेजे गए पत्र का फोटो कॉपी :-

भारत सरकार
आकाशवाणी , पटना

पत्र न० ११(८)टी) एम० ६५-पी-१   दिनांक:-

श्रीमान् ~~-श्रीमती-~~ रसिक लाल महतो,
ग्राम - खानपुर
पो० - खानपुर - जिला - भागलपुर।

प्रिय महोदय ,

सूचनार्थ निवेदन है कि राष्ट्रीय गीत प्रतियोगिता के लिये आपकी रचना-रचनाएँ डिक्लेरेशन फार्म के साथ प्राप्त हुई ।

आपका विश्वासी
25/11
कृते स्टेशन डायरेक्टर

मुझे याद है जब मैं बहुत छोटा बालक था पिताजी मुझे अपने कंधों पर बिठाकर घुमाते थे तथा घुमाते समय कवि भूषण की पंक्तियां 'इन्द्र जिमि जम पर बाढ़व सुवम पर' बार-बार सुनाया करते थे तथा गृहस्थी कार्य में लगे रहने के समय भी "श्री रामागमन" खण्ड काव्य की पंक्तियां 'अथ लेखनी तू चल संभलकर साकेत नगरी है वही, जिस पर हजारों लेखकों की लेखनी लिखती रही' गुनगुनाया करते थे। इस प्रकार पिताजी जाने अनजाने में ही अपने घर परिवार में साहित्य सृजन का बीज बो रहे थे, जो मेरे अग्रज भ्राता और आज बिहार के चर्चित कवि एवं गीतकार श्री आदित्य प्रकाश सिंह के रूप में अंकुरित, पल्लवित एवं पुष्पित हुए।

मेरे अग्रज भाई का काव्य जगत में आना एक धूमकेतु की तरह हुआ। सरकारी सेवा काल तक किसी को पता नहीं था कि उनमें काव्य के प्रति रूचि है या साहित्य में गहरी दिलचस्पी है। वर्ष 1996 में सरकारी सेवा से अवकाश ग्रहण किये हैं, तब से अबतक के इस अल्प अवधि में इनका चार काव्य संग्रह 1. दर्पण 2. स्नेह सुरभि 3. चांदनी रात 4. ढलती शाम प्रकाशित हो चुका है तथा काव्य रसिकों के द्वारा समाहत भी हो चुका है। उनकी रचनाऐं राज्य और देश की सीमाओं को पार कर अमेरिका के हिन्दी सौरभ पत्रिका तक में प्रकाशित हो चुकी है। इतना ही नहीं श्री अटल बिहारी बाजपेयी 'अभिनन्दन ग्रंथ' में मेरे अग्रज भ्राता की राष्ट्रीय चेतना से भरपूर कविता **"भारत की शान"** भी है। जिसका अनुवाद गुजराती भाषा में किया गया है तथा लोकार्पण गुजरात के राज्यपाल श्री सुन्दर सिंह भंडारी ने 29.04.2001 को राजभवन में किया। दूसरी भाषा में अनुवाद होना बिहार के किसी कवि के लिये विरल उपलब्धि है। इस तरह इन्हौंने राष्ट्रीय स्तर की पहचान बना ली। **"भारत की शान"** कविता लिखकर उन्हौंने अपनी काव्य सृजन प्रतिभा

से न सिर्फ गांव, समाज एवं राज्य को चमत्कृत किया है बल्कि अपने काव्य पुष्प से गांव समाज और पूरे राज्य को सुवासित कर दिया है और अपनी कविता जो 'स्नेह-सुरभि' में अंकित है को चरितार्थ भी किया है।

काव्य-दीप जो तुमने जलाया,
प्रकाश उसी का मैं फैलाता हूँ।
भीखनपुर हो जाये सुवासित,
मैं काव्य पुष्प बिखराता हूँ।

इस अल्प अवधि में ही कई एक सम्मानों तथा पुरस्कारों से सम्मानित एवं अलंकृत भी हो चुके हैं।

मेरे अग्रज भ्राता कवि श्री आदित्य प्रकाश ने प्रायः अपनी सभी पुस्तकों में पिताजी की काव्यकृति तथा उनके बहुआयामी व्यक्तित्व की चर्चा की है। आदित्य प्रकाश सिंह की काव्यकृति पर अपना अभीमत देते हुए कुछ विद्वानों ने पिताजी के विषय में भी लिखा है। जीवनी लेखन विधा के विशिष्ट शैलीकार श्री परमानन्द दोषी ने साहित्य मासिक पत्रिका 'श्रम मंच' के अप्रैल 97 अंक में 'दर्पण में प्रतिबिम्बित 'आदित्य का काव्य प्रकाश' शीर्षक के अन्तर्गत पुस्तक परिचय में पिताजी के बारे में लिखा है कि "आदित्य प्रकाश जी साधना - अराधना वाले सम्पन्न, समृद्ध शालीन सुसंस्कृत घराने से सम्बन्ध रखते हैं, जहाँ साहित्य सरिता की लोल लहरियाँ प्रवाहित हो रही है और इनके पिता स्व० रसिकलाल जी अपने नामानुरूप न केवल काव्य के रसिया ही थे प्रत्युत स्वतः सृजनशील साहित्यकार भी थे।

अखिल भारतीय भाषा साहित्य सम्मेलन के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष महाकवि ब्रजनन्दन सहाय 'मोहन प्रेम योगी' ने चांदनी रात काव्य संग्रह में अपना अभिमत देते हुए लिखा है कि 'श्री आदित्य प्रकाश सिंह एक सिद्धहस्त कवि एवं प्रकृष्ठ विद्वान पिता के पितृ भक्त सुयोग्य पुत्र हैं।'

शोषित मुक्ति पत्रिका के मई 2000 अंक में कविवर "आदित्य प्रकाश सिंह और उनका काव्य वैभव" शीर्षक के अन्तर्गत जीवनी लेखन विधा के विशिष्ट शैलीकार श्री परमानन्द दोषी ने लिखा है कि **आदित्य जी को वाणी का वरद पुत्र होने का वरदान अपने कवि हृदय पिता श्री और 'श्री रामागमन' हिन्दी के उत्कृष्ट खण्ड काव्य के यशस्वी प्रणेता स्व० रसिक लाल जी से विरासत में मिला है।**

आज साहित्य एवं काव्य जगत में साहित्यकारों एवं काव्य प्रेमियों के पास जब अग्रज भ्राता आदित्य जी की पुस्तक जाती है तो उनमें पिताजी के काव्य **"श्री रामागमन काव्य"** को देखने की ललक पैदा हो जाती है और काव्य प्रेमी जन पुस्तक की मांग कर बैठते हैं।

प्रकाशन की तिथि से 47 वर्ष गुजर जाने के बाद **"श्री रामागमन काव्य"** की प्रतियों को उपलब्ध कराना संभव नहीं हो पा रहा है। हिन्दी साहित्य सम्मेलन भवन, पटना के सभागार में दिनांक 1 मार्च 1998 को अपने अग्रज भ्राता आदित्य प्रकाश सिंह की दूसरी कविता पुस्तक 'स्नेह-सुरभि' का लोकार्पण समारोह तथा दो जनवरी 2000 को उनके निवास (गर्दनीबाग रोड न०- 37, क्वार्टर न०-1, पटना) पर उनके जन्म दिवस पर आयोजित 'नई सदी मिलन सह शुभकामना काव्य गोष्ठी' को देखकर मैं अभीभूत हो गया था।

ऐसे साहित्यिक वातावरण में पलने, बढ़ने के कारण साहित्य में मेरी भी अभिरूचि बढ़ गयी है। पुस्तकों के प्रति लगन एवं आकर्षण मुझे पिता से संस्कार में मिला है। अतः हिन्दी काव्य प्रेमियों एवं साहित्यकरों की मांग को देखते हुए मैंने पिताजी के अमर काव्यकृति **"श्री रामागमन"** का द्वितीय संस्करण निकालना नितांत आवश्यक समझा।

"श्री रामागमन" ऐतिहासिक खण्ड काव्य के साथ-साथ धार्मिक खण्ड काव्य भी है। इसमें मर्यादा पुरूषोत्तम श्री राम के लंका

विजय और साकेत लौटने का वर्णन है। इसमें असत्य पर सत्य, अन्याय पर न्याय एवं अधर्म पर धर्म की विजय का बड़े ही सरल भाषा में रोचक ढंग से चित्रण किया गया है। आज जब चारों तरफ अशान्ति है और असुरी शक्तियां पुनः सिर उठा रही है, अन्यायी एवम् अपराधियों का बोलवाला बढ़ रहा है, ऐसी स्थिति में 'श्री रामागमन' पढ़ने की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है। इस प्रसंग में कवि की ये पंक्तियाँ अवलोकनीय है :-

जहाँ शान्ति है राम वहाँ है,
जहाँ राम है शान्ति वहाँ है
शान्ति राम से जो भिन्न समझते
वो पावेंगे शान्ति कहाँ ?

आशा है साहित्यकार एवं काव्य प्रेमीजन इसे अपनायेंगे तथा अपनी प्रतिक्रियाओं से भी अवगत कराने की कृपा करेंगे।

शुभ्रांशु भूषण सिंह उर्फ अरविन्द

ॐ

श्री रामागमन

अ

अध्ययन के आरम्भ में इस बात को तुम ठानलो।
पिठू , गुरू तुम हो नहीं, हो स्वयं मानव मान लो।।
मानव ही मानते, मनन कर, मनन की बात।
दानव ही दबते, दबाते दण्ड, दाव, दाँत।।

आ

कवि होता ज्ञाता उस तल का।
जिसका जग को नहीं पता।
कवि जग को मति-अन्ध बनाकर।
जो चाहा सो दिखा दिया।।
स्वार्थ दम्भ प्रेमान्ध स्वयं बन।
कवि कसौटी त्याग दिया।।

इ

अथ, लेखनी तू चल सम्हल साकेत नगरी है वही।
जिस पर हजारों लेखकों की लेखनी लिखती रही।।
पथ, वारि में वारि मिला कर वारि मय करना नहीं।
तत्व उद्‌घाटन करो जग में अकेली ही सही।।

प्रतिकूल मानस का न हो अनुकूलता में क्या धरा।
सत्य में प्रिय हेतु ही जो कुछ मिलाया, है बुरा।।
उन बुरों को ही हटा कर सत्य उद्‌घाटन करो।
वारि-वाह पर तुम पवन सम भ्रम-शीतका शोषण करो।।

सत्य सुन्दर, स्वयम शिव, भूषण वसन सब व्यर्थ है।
नर-हस्त कृत-सुन्दर रसाल में (क्या)? स्वाद, तृप्ति, सार है।।
शब्द-भूषण-वसन से कुछ ने सजाया क्या! अहो।
दुर्गति करी ऐसी कि फिर दुर्गति न भगवन् और हो।।

लंका विजय कर राम जब साकेत में उतरा अभी।
क्या कहा,? भगवन् स्वयम् हां, पर कथा लिखना कभी।।
री लेखनी क्यों भूलती अज्ञात तो तेरी कथा।
कहती न क्यों! अपना पता लिखने चली भगवन् कथा।।

ई

पच्चीस नौ, छयासी इकावन अक्षांश देशांतर जहाँ।
नौ मील वायव्य दूर में जाह्न्वी जहनु जहाँ।।
भीष्मपुर जन्मे बढ़े ऋषि बसु नक्षत्र शुभ वर्ष में।
महतो सहित श्री रसिक लाल की लेखनी जय हर्ष में।।

व्योम शशि आकाश पख
विक्रम नृपति महान।
सम्बत की रचना सरल
बुध जन करेंगे मान।।

राम बाण आकाश रस
युग निधि पख प्रमाण।
द्वीप खण्ड शशि अरब अब्द
सृष्टि से अब तक जान।

क्यों

ऐतिहासिक, राष्ट्रीय-नायक, मर्यादा पुरूषोत्तम, भगवान श्री रामचन्द्र के चरित्र-गुणगान में आदि कवि वाल्मीकि से लेकर आज तक सैकड़ों, हजारों ख्याति प्राप्त सिद्ध हस्त कवियों की लेखनी लिख चुकी ; उस पर तुम जैसा अज्ञात व्यक्ति "क्यों " कुछ लिखने चला। यह एक प्रश्न है !!

निवेदन है, कि प्रत्येक कवि ने रामायण के सभी पात्रों के चरित्रों को अपनी-अपनी रचनाओं में ऐसे-ऐसे रंग रूपों में चित्रित किया कि ऐतिहासिक राष्ट्रीय महापुरूष भी तिलस्म और ऐय्यारी की कथाओं में चित्रित काल्पनिक पात्रों के समान विकृत और चरित्र हीन दिखाई देते हैं। जिसका स्पष्ट और विस्तृत दिग्दर्शन इस छोटे से "निवेदन " में कठिन है। अतः संकेत मात्र देखकर संतोष करें।

मेरा विचार है, कि ऐतिहासिक राष्ट्रीय, नायकों के चरित्र की एक-रूपता बनी रहे, कल्पना की उड़ान भरने भराने पर भी मूल रूप में किसी के चरित्र में विभिन्न्ता, विकृति, आदर्श-हीनता आदि दुर्गुण न दिखाई पड़े। अतः प्रत्येक कवि को रचना काल में इस बात का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए, कि मूल कथा में कोई परिवर्तन न हो जाय।

मेरा मत है, कि पहले पहल मानसकार को ही वाल्मीकि के प्रतिकूल नहीं जाना चाहिए था। गर मानसकार कुछ कर ही चुके तो भाषा के किसी कवि को रामचरित्र-मानस के प्रतिकूल नहीं जाना चाहिए था, जिससे पात्रों के चरित्र की एकरूपता बनी रहती।

चूंकि राम चरित्र मानस की सैकड़ों पंक्तियाँ निरक्षर भट्टाचार्यों से लेकर बड़े-बड़े दिग्गज पंडितों के मुख में अहोरात्र बराबर गुंजती रहती हैं इस प्रकार मानस की कथा जन-जन के हृदयों में घर कर गई है तब जो कथा रूढ़ रूप में विख्यात हो गयी है, उसके प्रतिकूल रचना को मैं और मेरे जैसे समान धर्मी अच्छा नहीं समझते।

"निरंकुशा कवयः" की उक्ति को ब्रह्म वाक्य मानने वाले क्यों कुछ दूसरा सोचें। चूंकि कवि या महाकवि की कल्पना ही व्यर्थ है, जब कि मैं एक साधारण लेखक भी नहीं हूँ, इसीलिए शायद मेरी ऐसी धारणा है, कि ऐतिहासिक, राष्ट्रीय महापुरूषों के प्रसिद्ध चरित्र के प्रतिकूल मन गढ़न्त, बिल्कुल विचित्र चरित्र को चित्रित करने वाली रचना किसी कवि को नहीं रचनी चाहिए। मुझे तो ऐसा लगता है कि मनमानी ढ़ंग से परस्पर विरोधी बातों को चित्रित करने वालों को, लोगों ने कवि और महाकवि की उपाधि से उपाधित (विभूषित) किया है।

मुझ से कोई कवि या महाकवि की परिभाषा पूछे, तो मैं निःसंकोच कह दूंगा, कि जो कवि एक ही स्थल पर परस्पर विरोधी बातों को चित्रित करे और जनता तथ्य को त्याग कर कवि के तुक्क, ताल, स्वर, लय आदि पर मुग्ध होकर आँख मूंद कर वाह-वाह करने लगे वही कवि और महाकवि है, और हो सकता है।

देखिये राम चरित्र मानसकार को :-

तनु , तिय, तनय, धाम, धन, धरणी,
सत्य सध कह तृण सम वरणी।।

जो कैकेयी इस तरह का तर्क वरदान मांगने के समय उपस्थित करती है, उस कैकयी को ईर्ष्यालु और स्वार्थिनी दिखाना परस्पर कितनी विरोधी बातें हैं। देखिये स्पष्ट कहती है कि (Duty first Self last) कर्तव्य को मानने वाला अपने शरीर को अपने प्रिय रानी कैकेयी को अपने प्रिय पुत्र राम को अयोध्या जैसे प्रिय निवास स्थान, धन और राज्य को कर्त्तव्य के आगे तिलांजलि दे सकता है। बताइये जो कैकेयी Duty कर्त्तव्य के आगे कैकेयी को भी तृण के समान त्यागने की सलाह देती है ; वह स्वार्थी कैसे ? यह जरा गहराई पर जाने से। जरा मोटा-मोटी भी देख लीजिए।

जो कैकेयी भयंकर युद्धों में शस्त्र संचालन के समय राजा दशरथ के साथ-साथ रहती थी, जिस विशेष गुण के कारण उन्हें दो वरदान भी मिला, वही कैकेयी-चौदह दिनों से अयोध्या के गली कूचे को सजाया जा रहा है, हाट, बाट, बाजार, जगह-जगह बन्दनवार और पताके फहराये जा रहे हैं, लोगों के हृदय में उत्साह की तरंगें हिलोरें मार रही है, रात-दिन नगाड़े बजाये जा रहे हैं, नाच-गान सब कुछ हो रहा है, इन सब बातों के होते हुए कहाँ क्या हो रहा, बिल्कुल नहीं जानती है। कैसी विचित्र बात है ?

क्या मानसकार कैकेयी के नब्जों पर हाथ रख मरफिया का इन्जेक्शन लिए हुए बैठे रहते थे ? गर मानसकार मरफिया का इन्जेक्सन दे ही रहे थे, तो चौदहवें रात्रि क्यों चूके ? जो कैकेयी होश में आकर वरदान मांग ही बैठी ? उस रात्रि को डबल सुई दे देना चाहिए था जिससे राज तिलक सानन्द सफल हो जाता। गर सुई देना भूल गये, तो राजा दशरथ को उसी (चौदहवें) रात्रि में कोप भवन में ले जाकर क्यों पटका ? हिन्दू विधान के अनुसार प्रत्येक शुभ कर्म के कर्त्ता को व्रत नियम, और ब्रह्मचर्य का पालन करना नितांत आवश्यक है।

तब राजा चौदहवें रात्रि कैकेयी के पास पहुँचे क्यों ? गर उन्हें कामुक भी मान लिया जाय तो गुप्त षडयंत्रकारी के नाते और रानीयाँ उन्हें थी या नहीं ? गर कैकेयी परिवार के विरूद्ध (मंथरा भरतादि को सूचना न देकर) राजा दशरथ षडयंत्र कर ही चुके थे तो उसी कैकेयी को खोजते खोजते कोप भवन तक क्यों जा धमके ? इन या ऐसे अनेकों परस्पर विरोधी बातों का समाधान लाख कोशिश करने पर भी मानस में नहीं मिलता है।

दूसरे भक्त की बानगी लीजिए :-

इससे परे थी न कुछ लग्न।
राजा थे आतुरता मग्न।।

लग्न का समय इतना जल्दी और धोखे से अचानक आ गया कि राजा दशरथ भरत को सूचना देने का समय ही न पा सके। लग्न जो अचानक आ धमका तो दशरथ छाती पीटकर रह गये। भरत को बुलाते तो कैसे बुलाते ? लेकिन सुमरिनि फेरते हुए वही भक्त कवि देखिये आगे क्या फरमाते हैं ?

भरत से सुत पर भी संदेह।
बुलाया तक न उसे जो गेह।।

अब देखिये, कभी कहते हैं कि लग्न ने दशरथ की गर्दन ऐसी मरोड़ी की राजा छाती पीट कर रह गये। लग्न ने छोड़ा ही नहीं कि पेशाव-पखाने के बहाने भी भरत के पास पहुँचते। अब कहते हैं कि राजा का षडयंत्र था जरूर। शंका न हुई तो खबर भरत को क्यों नहीं दी। इत्यादि।

तीसरे भक्त का नमूना देखिये :-

अपने मामा युधाजित के द्वारा भरत को ननिहाल में ही दो बातों का पूरा पता लगा कि साकेत का राज्याधिकारी भरत ही है, क्योकि राजा दशरथ यही प्रतिज्ञा करके कैकेयी के साथ ब्याह किया था, लेकिन अभी-अभी राजा दशरथ षडयंत्र करके राम को राजतिलक दे रहे हैं। इतना सुनते ही भरत वह भरत जो " साकेत संत " कहलाने का दम भरता है द्वेष वश हां द्वेष वश नहीं तो और क्या ? सिर पर पांव लेकर "साकेत" की गद्दी पर बैठने के लिए भागा कि कहीं मेरे पहुँचने के पहले रामचन्द्र का राजतिलक हो भी न जाय।

अयोध्या में आकर जब परिस्थिति का अध्ययन किया तो पूरा पता लग गया कि षडयंत्र हुआ था जरूर लेकिन षडयंत्र विफल हो गया। भंडाफोड़ होते ही षड़यंत्र के मुख्य नायक दुनियां से कूच कर गये। अब पाँचों अंगुलियां घी में हैं। "साकेत" की कुर्सी पर

केवल मात्र भरत के बैठने के लिए खाली पड़ी रो रही है। कुर्सी पर बैठे उसे हर्षित करना "साकेत सन्त" का काम था। लेकिन सन्त ऐसा निकला कि गद्दी को रोती हुई छोड़कर दौड़ा-दौड़ा चित्रकूट पहुँचा। पता नहीं कवि जी किस कल्पना लोक में विहार करने लगे कि 'साकेत संत' चित्रकूट से भागा तो साकेत नगरी से बाहर ही बंदी समान बंधे से रह गये।

चौथे कैकेयी भक्त का दृश्य देखिये :-

इनकी उद्दांत गुणालंकृता उज्ज्वल चरित्र वाली कैकेयी कभी ईर्ष्या की अग्नि में तड़प उठती है, कभी दुःस्वप्न देखती है, कभी सोते हुए ओठों को बड़बड़ाती है, कभी युग-पुकार का बहाना बनाती है तो दशरथ जी स्वयम् तलवार उठाते हैं तब यह तलवार छीन लेती है, कभी पुत्र को प्रलय की भट्ठी में झोंकती है। कभी "साक्षी हे युग धर्म विधाता" की दुहाई मचाती हैं, कभी राजतिलक को बंधन और कारागार मानती है, लेकिन उसी राज गद्दी पर अपने पुत्र भरत को बैठाने के लिये रात भर व्यग्र हो छट पटाती रही जरा भी नहीं सोती आँख लगते ही बड़ बड़ाने लगती है और 'तड़प उठी वह आग धूली' आँखें लाल-लाल किए हुए इसी तरह तड़पती गिरती पड़ती रही एक मिनट को भी उसे चैन न आई।

राज तिलक के कारागार से रामचन्द्र को मुक्त कराते ही इनके दशरथ को इतना अपार हर्ष हुआ कि उनके प्राण पखेरू उसी प्रकार इनके त्रेता युग में उड़ गये जिस प्रकार हर्ष विस्मय के सामंजस्य से कुरूराज का द्वापर में उड़ गया था। यह राम और कैकेयी के भक्तों का अति संक्षेप में संकेत मात्र हुआ।

पांचवें कुरूक्षेत्र भक्त का एक उद्धरण ही सही।

न समझो किन्तु इस विध्वंस के होते प्रणेता।
दलों के अग्रणी दो ही पराजित और जेता।।

युद्ध के उपर गम्भीर दार्शनिक विचार उपस्थित करने के कारण जिनका नाम भारत वर्ष भर में गूँजत्र है और इनकी यह रचना बड़े चाव से बड़े बड़े दिग्गज पढ़ा करते हैं उनकी उसी रचना में उसी प्रकरण में नीचे की पंक्तियों को देखकर मिलाइये और देखिये की दोनों उक्तियां परस्पर विरोधी है या सहधर्मीणि।

दुनियां तज देती न क्यों उनको।
लड़ने लगते जब दो अभिमानी।।

उपरोक्त उद्धरणों से कोई व्यक्ति ऐसा निष्कर्ष न निकाले कि विगत या वर्तमान के किसी कवि या व्यक्ति के प्रति मैं किसी प्रकार की अश्रद्धा की भावना रखता हूँ।

अपने अपने वर्णनों में किसी कवि ने अपने किसी पात्र के चरित्र की एक रूपता क्यों नहीं रक्खी यह जानने भर का प्रयास मात्र मेरा उद्देश्य है।

अपनी एक उक्ति उपस्थित कर इस प्रकरण को मैं अब समाप्त करना चाहता हूँ। जब बड़ों-बड़ों की हाल यही, फिर छोटे क्यों अपवाद बने।

यद्यपि बड़े-बड़े समालोचकों ने इन लोगों की रचनाओं को तुक, ताल, मात्रा, लय, साहित्य और कला की कसौटी पर जाँचा है। लेकिन मैं (रसिक) मनुष्य के हाथों से बनाये कांच के सुन्दर से सुन्दर रसाल (आम्र फल) को मुंह से चूसना पसंद नहीं करता हूँ। मैं रसिक जहाँ सार (रस) नहीं पाता वहाँ स्वाद कहाँ ? जहाँ स्वाद नहीं पाता वहाँ तृप्ति कहाँ कैसे पाऊँ ? कांच के सुन्दर से सुन्दर रसाल टूटते ही घाव कर देंगे। फिर स्वाद तृप्ति और रस कैसे ? जिन्हें-मेरे वर्णनों में कहीं भी एक रूपता भंग होती जान पड़े-परस्पर विरोधी बातें मिले वे अविलम्ब मुझे सूचित करने की कृपा करेंगे तो मैं उनका अत्यंत आभारी होते हुए उस स्थल को तत्क्षण बदल डालने की चेष्टा करूँगा। पिंगल और व्याकरण के घेरे (दीवाल) को तोड़ना अच्छा नहीं मानता। लेकिन उन दिवालों को फांद कर बाहर भीतर जाने को मैं बहादुरी समझता हूँ।

इसीलिए भयंकर से भयंकर दृश्यों का चित्रण बिल्कुल सीधे सादे शब्दों द्वारा किया गया है।

'भय से भी भय लगा कांपने।
देख काल को महा काल भी लगा कलपने।'

इत्यादि प्रकार के प्रयोग मेरी रचना में शायद नहीं मिले।

जिस प्रकार विद्युत यंत्र के दो तार अलग-अलग अपनी कोई हस्ति नहीं रखते लेकिन मिलाकर छूते ही बड़े बड़े प्राणियों की हस्ति एक मिनट से कम समय में ही समाप्त कर देते हैं। उसी प्रकार सर्वत्र विशेष कर छठे पृष्ठ के सीधे सादे शब्द समूह मिलकर कितने भयानक हो गये हैं ?

ढाई अढ्ढे पर वर्षों से बिछड़े हुए सर्वप्रिय नेता के बीस-पच्चीस मिनट के भाषण में, जो

संकटमय लम्बे जीवन काल की घटनाओं की एक सूची ही है, साहित्य और कला की सम्भावना कैसे ?

अपने आठ अंगों से टेड़े-मढ़े महर्षी अष्टावक्रजी को अच्छे मनुष्यों के समान सभी अंगों से सीधा करके चित्रित करने वाला व्यक्ति चित्रकार या कलाकार कहला सकता है क्या ? उसी प्रकार शुक्राचार्य को दोनों आँखों से चित्रित करने वाला व्यक्ति चित्रकार या कलाकार नहीं कहला सकता है। और तो और एक ही व्यक्ति-बैरिस्टर गांधी को लंगोटी पहना कर चित्रित करने वाला और महात्मा गांधी को लंदन के गोलमेज कान्फ्रेंस में ही क्यों न हो, कॉलर नेटटाई पैंट पहना कर चित्रित करने वाला व्यक्ति चित्रकार या कलाकार कहला सकेगा क्या ?

मर्यादा पुरूषोत्तम रामचन्द्र जी में - वे कौन-कौन मर्यादायें थी - कौन सी सीमा रेखायें थी - कौन-कौन विधान थे कौन-कौन रूल रेगुलेशन थे - किस-किस तरह का लॉ और एक्ट था जिसका अक्षर- अक्षर पालन करने पर मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाये।

देखिये-वे कितनी मर्यादाओं को भंग करते हैं।

१. वंश परम्परा-विधानानुकूल, राजा के जयेष्ठ पुत्र होने के कारण वे राज्याधिकारी हुए लेकिन सिंहासन को ठुकरा दिया।

२. राजा दशरथजी ने उन्हें राजा बनाना चाहा-राज्यारोहणोत्सव की तैयारियाँ की, उसे भंग किया।

३. अन्त में राजा ने इच्छा प्रकट की कि अगर रामचन्द्र किसी प्रकार अयोध्या में रह जाँय तो मैं बच सकूँगा अन्यथा नहीं। इसे भी भंग कर राजा के मृत्यु का कारण बने।

४. मंत्री परिषद् गुरूजन साकेत की समस्त प्रजाओं की आज्ञाओं-इच्छाओं के प्रतिकूल वे जंगल चले ही गये।

५. और तो और अन्त में नये राज्याधिकारी के अधिकार से समस्त प्रजाजनों की सम्पत्ति से विशेषकर जब पिता की मृत्यु का समाचार लेकर-कहकर चित्रकूट से अयोध्या लौट चलने की आज्ञा दी-प्रार्थना की उसे सुनते ही उच्छृंखलता कहा जाय-हठता कहा जाय-अमर्यादा कहा जाय कि वे और घोर जंगल (दण्डकारण्य) को भाग गये इत्यादि।

धीर प्रकरण को पढ़कर देखिये। धीर अपने संविधान पर चलते हैं, इसलिए धीर रामचन्द्र दुनियां की परवाह किये बिना वैसा कर सकते थे लेकिन वे मर्यादा पुरूषोत्तम कहलाते थे। अतः उनके लिये दूसरा कोई संविधान अवश्य होना चाहिए जिसका उल्लंघन

उन्होंने जीवन पर्यन्त कभी नहीं किया। हां वह संविधान रचयिता-नेहरू के गांधी दयानन्द के विरजानन्द शिवा के रामदास चन्द्रगुप्त के चाण्क्य अर्जुन के कृष्ण जैसा कोई व्यक्ति विशेष ही हो लेकिन होना अवश्य चाहिए।

मेरा अभिप्राय यह है कि साहित्य और कला के लिये किसी राष्ट्र नायक का चरित्र बलिदान न किया जाय, क्योकि ऐतिहासिक राष्ट्रीय चरित्र नायकों का सम्बल पाकर ही कोई राष्ट्र, साहित्य और कला फलती फूलती है, न कि चरित्र नायक। कालिदास का नाम ले लेकर शकुन्तला अमर हुई है क्या ?

एक बात और :-

बलवान से बलवान शक्तिशाली व्यक्ति भी, अपने से निर्बल या योग्य व्यक्ति पर जब कभी प्रहार को उद्यत होता है, ठीक उसी समय एक साधारण या किसी ऐरे गैरे की रूक जाइये, गम कीजिए, थम जाइये, जरा सुनिये तो इत्यादि में किसी एक बात के सुनते ही प्रहारकर्त्ता बिल्कुल रूक जाता है, सारी शक्ति समाप्त हो जाती है, हतप्रभ सा हो जाता है। मानोविज्ञान का यह एक निर्विवाद सत्य तथ्य है। दूसरी ओर एक निर्बल व्यक्ति भी जब कभी किसी पर प्रहार करने की उधेड़बुन में हो ठीक उसी समय मारो मारे बिना छोड़ना नहीं सुनते ही निर्बल भी बलवान पर प्रहार कर ही बैठता है। परिणाम पीछे चाहे जो कुछ हो। इस प्रकार देखा जाता है पृष्ट पोषक के बिना किसी युग में कोई कुछ नहीं कर सकता है। संघ या पृष्ट पोषकों की आवश्यकता सब युगों में है। मूर्ख ही "संघे शक्ति कलौयुगे" जपते हैं।

द्वितीय विश्व-युद्ध के अद्भुत सेनानी जेनरल रॉमेल के द्वारा बराबर आगे बढते रहने पर भी इटालियन सेनायें उनकी अनुपस्थिति (दूसरे मोर्चे पर रहने की अवस्था) में बराबर पीछे हट जाया करती थी। यह दशा देखकर विवश होकर हिटलर ने रॉमेल को घर (जर्मनी) वापस बुला लिया। उसी समय हिटलर की मनः स्थिति भांप कर इस लेखक ने संघ अर्थात पृष्ट पोषक की महत्ता पर नब्बे पंक्तियों का एक छंद गुन गुनाया था। प्रकाशित तो हुई नहीं लिखी हुई नहीं रहने पर भी उसकी अधिकांश पंक्तियां अब भी मेरे मानस में जब तब गुँजती रहती है। उनमें से दो चार पंक्तियां पहले पहल यहाँ ही सही।

इटली पराभव देखकर हिटलर अभी हैरान है।
पर फ्रांस के भी पतन पर चर्चिल की चढ़ती शान है।।
मित्रों कहो मिलकर सभी इस मनो वेग का क्या मर्म है।
आकाश जल थल त्रसित जिससे क्यों वही वेचैन है।
इटली पतन पर दृश्य में कोई कहीं नहीं मित्र है।
जब पृष्ट पोषक के बिना होता पराभव सिद्ध है।।

एक मित्र के भी पतन पर अमित्र सब जब मित्र है।
यह सिद्ध करता है सदा ही संघ ही में शक्ति है।।

जग भर विपक्षी हों भले पर पृष्ट पोषक चाहिए।
शक्ति अतुल हो न्यून हो संख्या भी वैसी चाहिए।।
शक्तिऔ संख्या देख लो चन्द्रगुप्त शिवाजी की सभी।
गुरूवर सहायक देखकर भय भीत थे किसी से कभी।
हर मोर्चे पर सदा विजयी पीछे हटने के समय भी।।

किसी मोर्चे पर कभी पराजित नहीं होने वाला हिटलर, पृष्ट पोषक के बिना अपनी सारी शक्तियों को समेट कर, सकुशल घर पहुँच कर, विश्व में पाँच मिनट के अन्दर प्रलय मचाने वाले भयंकर शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित, जिस शस्त्र भंडार को अपनी आँखों देखकर विजयी चार्चिल भी तब तक सिहर सिहर कांपता रहा, जब तक ब्रिटिश और अमेरिकन सेनाऐं उन अस्त्र शस्त्रों को बड़े-बड़े जहाजों पर लाद-लाद कर अटलांटिक के गर्भ में छिपा नहीं दिया।

अंत में भी समर्थक की खोज में रेडियो पर सात दिनों तक विश्व को प्रलय की भट्ठी में झोंक कर संसार को समाप्त कर दूँ या जर्मनी को पराजित करूं का रट लगाते लगाते

विश्व को झोंकू प्रलय की भट्ठी में या मैं स्वयम्।
पृष्ट पोषक हीनता का दे दिया परिचय स्वयम्।।

एक भी समर्थक नहीं मिलने पर विवश होकर स्वयम् अंतर्ध्यान हो गया।

कहने का अभिप्राय, चाहे राम हो या अर्जुन, चन्द्रगुप्त हो या शिवाजी, शंकर हो या दयानन्द या ऐरे गैरे कोई हो हर किसी के लिये अधिक से अधिक पृष्ट पोषकों का संघ या गुट न हो सके तो भी कम से कम एक पृष्ट पोषक तो अवश्य ही चाहिए। वह पृष्ट पोषक अपने जीवन पर्यन्त अपने धुन का धुनी रमाने वाला हो।

उच्छृंखल मस्तिष्क, विक्षिप्त मस्तिष्क का पृष्ट पोषक या अचानक चौंक कर कुछ का कुछ करने वाला न हो अनुगामी पर हृदय से प्रेम करने वाला हो। द्वेषवश प्रलय की भट्ठी में झोंकने वाला न हो।

यद्यपि, मैं १९२६ ई० से ही 'स्वान्तः सुखाय' छन्द बनाता रहा, लेकिन जनता जनार्दन के सामने मेरा यह बिल्कुल पहला प्रयास है। अतएव सर्व प्रकार की भूलों (अशुद्धियों) के लिए प्रेस आंचल में अपना मुँह नहीं छिपा कर जनता जनार्दन से आशिर्वाद की कामना करता हूँ। बसंत पंचमी सं० २०१० वि०

रसिक लाल महतो

श्री रामागमन

ओऽम-ओऽम कर राम ने
धरा धरा पर पांव।
"अपनी बीती व्यक्त कर"
तब जाऊँगा गाँव।।

"दनुज दनुजपति को समाप्त कर
लंका से मैं हो आया।
दनुजों की अब कथा पुरानी
रही दनुज की नहीं छाया।।

हम लक्ष्मण दोनों छोटे थे
और भरत शत्रुघन छोटे।
निशिचर सबल समग्र फैले थे
सुर, नर, मुनि खा खा खोटे।।

रक्त उबल पड़ता था मेरा।
अधिक लक्ष्मण का मुझ से।।
चुपचाप हमें सहना पड़ता था।
भेंट नहीं होती किसी से।।

मृगया को मैं सदा निकलता।
कभी नहीं किसी को पाता।।
रघुकुल कमल दिवाकर लख कर।
दनुज उलुक छिप-छिप जाता।।

सुन-सुन कर बेचैन उबलता।
कहीं उसे जो लख पाऊँ।।
शून्य अवध में आने का।
मैं पाठ उसे सिखला पाऊँ।।

पर उनकी हलचल नहीं मिटती।
बढ़े - बढ़े ही आते थे।।
कहाँ दण्डकारण्य पंचवटी।
कौशिक मख तक आते थे।।

कहीं रक्त पीते किसी नर का।
कहीं अस्थि का ढ़ेर किया।।
कहीं मांस भक्षण में रत हो।
क्रूर व्याघ्र सम खेल किया।।

कहीं दनुज मनुओं की नारी।
को लेकर खूब खेल किया।।
और उसी नारी का जिस दम।
चाहा खाल उधेड़ दिया।।

कहीं सजीव मनुज अंगों को।
काट - काट कर खाते थे।।
चीख और चिल्लाहट पर।
आमोद - प्रमोद मनाते थे।।

कभी षोड़सी बालाओं को।
सबके सन्मुख नग्न करें।।
और उन्हीं में जिस पर चाहे।
मन चाही व्यभिचार करें।।

काम तृप्त कर-कर नाचें वे
मनुज देव मुनि नचा लिया।
चुं-चां करना महा कठिन था
नहीं किसी ने आह किया।।

कभी किसी नारी का बच्चा
झपट गोद से ले फेकें।
या भट्टी में झोंक किसी को
हँसते ज्यों लिट्टी सेकें।

कभी किसी वाला-कन्धे पर
दनुज लपक कर चढ़ते थे।
गिर पड़ने पर उसे रौंद कर
खूब मचल कर चलते थे।।

कितनों को नंगी रखते थे
पिता पुत्र के सम्मुख ही।
मारा और पिलाया हाला
जो न मर सकी झटपट ही।।

गौवों के टटके रूधिर को
विप्रों के मुख में डाला
असुर खेल को वे क्या जानें
जिनको नहीं पड़ा पाला।।

अपने मुख में गाय-रूधिर ले
देवों के मुख में मारा।
टस से मस के लक्षण ही पर
कूट - कूट करके मारा।।

भिन्न दनुज के भिन्न खेल थे
कौन उन्हें गिन सकता है।
सुन-सुन कर के प्राण कण्ठगत
कौन कहाँ सह सकता है।।

वालाओं के योनि-बाल को
दाँतों से खींचा करते।
आह किये पर दाँत काटकर
योनि-मांस मुख में देते।।

सुर बाला के छिपे झुण्ड को
किसी असुर ने देख लिया।
गुप्तांगों पर शल्य-तुलिका
चित्रित कर परेड किया।।

वालाओं के बालों से
टांगों को उल्टा बांध मिला।
टांग समूह पर दौड लगाकर
कहते मैं हूँ असुर भला।।

बाल शिश्न का खाल खींचकर
खूब नचाया करते थे।
मौत बाल की आती थी
वे मौज मनाया करते थे।।

अति रंजित यह कथा नहीं है
है प्रत्यक्ष बीती बातें।
अब शेष, मध्य, आरम्भ, अन्त
तक, देखी सब राक्षस घातें

सुर नर मुनि की पड़ी हड्डियां
सतत् दिखाई पड़ती थीं।
क्षत-विक्षत विकलांग वृद्ध
के दृश्य दिखाई पड़ती थीं।।

कितने अर्ध जले मिलते थे
जिन्हें जलाया भट्ठी में।
कितने जल ही रहे मिले
पर सांस शेष थी भट्ठी में।।

कितने झूले कुछ न खोले
जिनमें सांसे थी बांकी।
बन्धे टांग तरूणी खुलवाये
जिनमें सांसे थी बांकी।।

साकेतवासी विश्वास तुम्हें है
संशय-रहित-कथन मेरा।
सतत् सभी के लिये रहा है
संशय रहित चरित्र मेरा।।

"पर इस भारत में जन्मेंगे,
कभी कुतर्की, कायर भी।
"राम समक्ष व्यर्थ की बातें
यों लिख देते शायर भी"।।

"उन हिजड़ों को कौन बुझावे
जो न दुःखी लखने जाता।
असुरों के रौरव कृत्यों को
नहीं साहस बिना देख पाता।।

सीता को विराध ले भागा
मुक्त भोगी मेरे आगे।
असुरों ने क्या क्या न किया?
हां, सीता थी लक्ष्मण आगे।।

इस प्रमाण के रहने पर भी
यदि कुतर्क करें हिजड़े
राम वहाँ चुप रहना उनसे
जिनके कर्म बुद्धि बिगड़े।।

कौन कहाँ किस क्षण रोवेगा
इसका कौन ठिकाना था।
छिप कर भी रोने में डर था
अपने को न मिटाना था।।

निशिचर रहे न निशिचर वत वे
छिप कर के तम में आवे।
महा क्रूर प्रमत्त बने थे
रात दिन चलते धावे।।

सत की सत्ता रही न कुछ भी
तम का जाल बिछा डाला।
कन्दर-मन्दिर में छिपे हुओं को
खोज - खोज भोंका भाला।।

पंचवटी दण्डकारण्य में
कहीं नहीं मख हो पाता।
मख समेत मख कर्त्ता को भी
काट कूट खाता-पीता।।

भोंक-भोंक बच्चों को भाला
उँचा कर के चलते थे।
दो टांगों को पकड़ दनुज
वो खूब खींचते चलते थे।।

वीचों-व ीच उखड़ता कोई
टांग किसी का टूटा भी।
रक्त फव्वारा दृश्य भयानक
अंग-अंग से छूटा भी।।

बर्षाती मेंढ़क अहि-मुख से
कभी कहीं पर भाग सके।
पर मनुज में था नहीं साहस
दनुज पकड़ से भाग सके।।

नित-नित नये खेल रचते थे
दारूण महा भयानक ही।
वाधा औ व्यवधान कहाँ था
जो थे सभी सहायक ही।।

नहीं विश्व में वीर कहीं था
इनकी हलचल को रोकें।
बलहीनों में नहीं एकता
इनकी हलचल को रोकें।।

परशुराम तुम वीर नहीं, तुम
कहाँ दनुज को है मारा।।
जप-तप मख सब छिप कर करते
सब के संग तुम भी हारा।।

परशु तुम्हारा कहाँ चला है ?
अपनी माँ पर छोड़ बता।
क्या? श्रवण चक्षु दोनों विहिन थे
कौशिक-मख भंग का न पता।।

घनुष - यज्ञ में पीछे आया
वीर कहाँ ? पीछे रहता।
पहले आकर अकड़ बैठता
गर कुछ भी पौरूष रहता।।

सुना किसी से धनुष पुराना
किसी किशोर ने तोड़ा है।
वीर विहिन सभा को समझा
परशु दिखाने दौड़ा है।।

पर हो गई भेंट लक्ष्मण से
पता चला अपने बल का।
तप हिजड़ों ने ढ़ाल बना ली
पकड़ा राह किसी वन का।।

शूर समर करनी करते हैं
नहीं बड़प्पन निज करते।
अवसर पर पौरूष दिखला कर
अपनी धाक जमा देते।।

सहस्त्रवाहु जमदग्नि सत ये
दोनों परम विरोधी थे।
किसको कौन मिटादे किस क्षण
इसी घात के खोजी थे।।

कपि बाली के बल की चर्चा
केवल एक कहानी थी।
सुग्रीव रक्त लखते ही भागा
अपनी जान बचानी थी।।

निकला बाली शिला टाल कर
पक्ष नहीं महीनों बीता।
अनुज-वधु संग मग्न एक था
एक कहीं छिप कर जीता।।

इसी तरह जिनमें कुछ बल था
उनमें कहीं नहीं एका।
सबसे सबको भिन्न भाव था
अपनों को अपने रोका।।

अंग अवध से पुण्य देश है
वहाँ न निशिचर की माया।
छेड़ छाड़ गर किया किसी ने
प्राण गवाँ देना भाया।।

कहीं किसी को एक दिवस में
नहीं काट करके खाता।
छिपे-छिपाने पर भी उसको
खोज-खोज करके खाता।।

थे कराहते दारूण दुःख से
मरण मनाते क्षण-क्षण वे।
नित-नित अंग काट खाने पर
शीघ्र नहीं जब मरते वे।।

कहीं किसी को बान्ध खम्भ में
अपने श्वान शिकारी से।
कटवा करके मोद मनाते
सुनकर चीख तपी जन से।।

कहीं किसी कन्धे पर चढ़कर
गोता खूब खिलाते थे।
दम छुटने पर उसे सड़ाकर
मछली खूब फंसाते थे।।

टांग बांध कर टांग-टांग
देवों को खूब झुलाते थे।
जप और त्याग तपस्या का
दानवी अर्थ समझाते थे।।

कहीं किसी को बान्ध डाल में।
प्रज्वलित अग्नि नीचे रखते।
नित-नित त्वचा जला कर
कहते, देखो तप ये हैं करते।।

हाथ पाँव को बान्ध अन्य का
झूला खूब बनाते थे।
झूलों पर बैठ झुलावे कोई
भक्ति भाव बताते थे।।

किसी देव कन्धे पर चढ़कर
दौड़ा कर हैरान करें।
"असुर श्रेष्ठ होता है जगमें
सीखो कैसे मान करें"।।

"लंकेश्वर की आज्ञा जैसी
वैसा हम कुछ करते हैं।
रह जाती क्या? कमी कहीं कुछ
इसी बात से डरते हैं"।।

"पूरा करना ही होगा
तब तक हम को है चैन कहाँ?
देव मनुज मुनि मिट जाने पर
हो सकता विश्राम यहाँ"।।

बलि प्रदान जब जब होता था
ऋषि देव मुनियों का ही।
दनुज-पूज्य खुश होते थे या
स्वयम् दनुज अपने मन ही।।

इन अत्याचारों को लख कर
मनुज दनुज बन जाते थे।
बन जाने में देर हुई तो
चट शिकार हो जाते थे।।

वनना दनुज खेल मत समझो
कट मरना आसान कहीं।
रूधिर, मद्य लखते ही भड़के
मरते, बनते दनुज नहीं।।

तभ की रही अधिकता जिनमें
रहे ताक अवसर को ही।
हल्ला, बाला नर - भक्षण का
मिल गया मौज सस्ते सबही।।

सड़े मनुज के मांसों का
उसको भक्षण करना पड़ता।,
और दनुज का वमन उठाकर
शौक-शौक खाना पड़ता।।

दनुज बना जो नया-नया
प्रमाण उसे रखना पड़ता।
गौ की, नर की ओझरी आँत को
ओढ़-ओढ़ चलना पड़ता।।

इससे अधिक वीभत्स वृत्ति
होती थी उसे नहीं कहना।
जिस पर की कुछ कभी न बीता
व्यर्थ अधिक उन से कहना।।

साकेत-परिधि के परे कृत्य को
कहो न किसने था जाना।
सुख-मदिरा के नशा-मौज में
सब ने झूठ कहा, माना।।

साकेत परिधि के परे सभी
झूठे कहते मैं नहीं माना।
अवकाश किसी को था न तनिक
बाहर जाकर क्यों नहीं जाना।।

सीमा कैसे करूं पार यह
चाह सतत् मुझको रहती।
आज्ञा बिना विवश रहता मैं
रात दिन फटती छाती।।

आज्ञा दे दें पिता हमें
ऐसा अवसर कौशिक लाया।
टाल-मटोल की बात सुन कर
मेरा मन फिर भिन्नाया।।

मेरे मन की गति देखकर
माँ ने उनको समझाया।
गुरू वशिष्ठ ने सुर मिलाया
मन वांछित मैंने पाया।।

जैसे आज्ञा मिली पिता की
कौशिक-मख देखने गये।।
वर्णित असुर कु-कृत्यों का
आभास वहाँ हमने पाये।।

किया वहां निश्चय हमने
अत्याचारी के नाश बिना।।
साकेत-शान्ति, सम्राट-मुकुट
पर रहता संकट बड़ा बना।।

निश्चय यद्यपि किया वहां
पर कौशिक के आधीन रहा।
परम पूजनीया आज्ञा बिन
आगे बढ़े बिना ही रहा।।

तबसे चिन्ता रही हमें फिर
कैसे आज्ञा दे दें माँ।
युद्ध-कला-प्रवीण माँ की
हाँ में हाँ रखती निज माँ।

अतः वही माता मेरी
बन गई रही अपनी माता।
दो हृदयों में भाव एक
अब भी न पता को निज माता।।

सुन आदेश पिता का वन का
कहीं पुत्र नहीं वन-बसना।
जो आदेश पिता औ माँ का
पुत्र शीघ्र वन को जाना।।

मेरी गुप्त प्रबल इच्छा को
बिना कहे लख लेती है।
इसी लिये उनकी आज्ञा ही
ठौर-ठौर सुख देती है।।

मैं जो कानन गया वसा
मेरी इच्छा भर पूर रही।
सहज तपस्वी वत वसने पर
पता चलेगा वृत सही।।

असुर निकन्दिनी माँ मेरी जो
रखती है सामर्थ्य सदा।
थी चाह मिटाऊं स्वयम् असुर को
अवसर मिल जावेगी यदा।।

अवध निवासी सभी मग्न थे
छोड़ दूसरों से नाता।
अपने सुख में सुखी सभी
देखने कौन? बाहर जाता।।

था बिलास मय-जीवन सब का
कमी नहीं सुख साधन की
जिनके पांव न फटी विवाई
क्या जाने? पर के दुःख की।।

जो सुख में ही सदा झूलते
पर के दुःख को क्या जाने?
जो सब दिन रह गयी बांझ, वह
प्रसव-पीड़ को क्या जाने।।

पर इस नगरी में है कोई
सदा आह ! करती रहती।
कैसे असुर श्रेणी मिट-जावे
यही सोचते ही रहती।।

मोद प्रमोद मनाने पर भी
हैं विरक्त सुख साधन से।
मीन, जोंक, सेमार, केंकड़े
उपर जलज भिन्न सबसे।

वे ही अहो-रात्र लखती थी
दूर - दूर लंका गढ़ को।
किसको कैसे अभी भेज दूँ
विजय करें लंका गढ़ को।

"मैं स्वयम् चली जाती अपने
हेतु नहीं, व्यवधान बड़ा।
किसी कार्य का कारण मत बन
लखती कण्टक एक बड़ा"।।

हेतु खोजती ही रहती थीं
पर सतर्क रहता रावण।
दनुजों पर आदेश कड़ा था
"पहुँचे नहीं अवध किसी क्षण"।।

इसी तत्व को खूब समझ कर
रावण सदा सतर्क रहा।
इसलिये मैं रूक-रूक जाता
दण्डक तेरह वर्ष रहा।।

चातक को स्वाति बून्दे सम
शूर्पणखा मिल गयी वहाँ।
सीता-हरण किया जब रावण
नहीं रही कुछ कमी वहाँ।।

संघ रचा बानर भालू का
घर-घर अलख जगा करके
अपना कार्य छोड़कर पहले
कार्य किया संगी जन के।।

संघ बिना नहीं विजय हमारा
पहले और नहीं किसी का।
संघ विजय है सभी काल में
समझो मर्म सभी इसका।।

युद्ध सदा अनिवार्य रहा है
कभी नहीं मिटने वाला।
इसी तत्व को खुब समझ मैं
संघ बीज बोने वाला।।

रिक्त ताल में कमल नाल को
जो न लगाता है पहले ।
भरे ताल अंगूठा दिखलाते
जो न किये रहते पहले।।

कर्षण करके रिक्त क्षेत्र में
बीज़ बपन जो नहीं करते।
वर्षा उनके लिये कोढ़ है
व्यर्थ खेती गलते सड़ते।।

इसीलिये जन-जन(के) हृदयों में
साहस-बल जो नहीं भरती।
उनकी भेड़ सदृश्य सेनायें
एक भेड़िया से डरती
उनकी व्याघ्र सदृश्य सेनायें
एक धोविया से डरती।।

कठिन ग्रीष्म में दनुज-अर्क-तम
परम प्रफुल्लित थे बढ़ते।
लक्ष्मण राम कर्क सिंहवत
सत में नवजीवन देते।।

दण्डक बन्ध्या वत विषण्ण थी
रूठे पति परदेश गये।
लक्ष्मण राम वहाँ पहुँचे थे
स्वयम् पति श्रृंगार लिये।।

मेरे तप से जो न सुधर ले
मेरे तीर सुधारेंगे।
तपी - दधीचि - अस्थि-बज्र फिर
निशिचर को संहारें गे।।

मेरे तप औ तीर, घोष सुन
सब में फिर उत्साह बढ़ा।
पूर्ण - इन्दु भी सुप्त-समुद्र का
देता है उत्साह बढ़ा ।।

ये जो इतने सखा साथ हैं
था न कभी परिचय किसी से।
करना पड़ा विवश हो परिचय
सीता हरी गई जब से

आत्म ग्लानि में डूब रहे थे
लगता नहीं किनारा था।
सब के साधन विखर रहे थे
बना दनुज का चारा था।।

सब में अग्नि सुलग रही थी
हो जावें विस्फोट कभी।
सीता चिनगारी पड़ने पर
गिरा लंक का कोट अभी।।

करना पड़ा प्रयास अधिक नहीं
केवल आगे था बढ़ना।
लंकेश्वर गज को केवल था
दंश एक वृश्चिक पड़ना।

सब से पहले मिला जटायु
जो तब-तक मरते दम था।
लंकेश्वर स्वेच्छाचारी का
वही एक कुकृत्य कम था।।

बजरंगी फिर मिले हमें
सुग्रीव-सखा परिचय जिनका।
स्वत्व-प्राप्ति को लड़ना-मरना
कहा भेद अपने मन का।।

बालि-वध कर संघ नींव
सबसे पहले निज कर डाला।
सब पूरा सुग्रीव किया जब
पहना दिया विजय माला।।

बालि - वध वर्षाऋतु आई
वहीं रहे अटके हम सब।
असुरों को सुर में परिणत का
करते रहे विचार हम सब।।

सब के पीछे मिला विभिषण
दशन दशानन जीभ यही।
वज्र बून्द चोटें पड़ने पर
गिरि विभिषण टिका सही।।

संघ कार्य पूरा होने पर
चाह नहीं थी लड़ जाऊँ।
यत्न किया कि देव बनाकर
बिना युद्ध सीता पाऊँ।।

सदा मुझे रहती थी मन में
है पुलहस्त्य मुनि का नाती।
महाराज - नीतिज्ञ धनुर्धर
जगत पूज्य ब्राह्मण जाति।।

वेदों का उद्भट पण्डित वह
परम अराधक शंकर का।
युद्ध वीर बेजोड़ बड़ा है
मिला न उनके टक्कर का।।

इससे युद्ध भयानक होगा
बिना मरे नहीं हारेंगे।
पराजित औ जेता दोनों
अरबों को संहारेंगे।।

यही समझ मैं सब दिन चाहा
रावण अब भी देव बनें।
ध्रुव, अन्तरिक्ष, जल, पृथ्वी तत्व सब
और चराचर शान्त बनें।।

सृष्टि प्रवर्ते सभी शान्ति मय
शान्ति शान्तिमय शान्त बनें।
लख कर सुन कर और समझकर
हो प्रसन्न मां शान्त बनें।।

विग्रह और तपस्या क्या है?
शान्ति बिना नहीं राम बनें।
प्रिय से प्रियतम वस्तु घृण्य है
शान्ति बिना, सच राम गनें।।

राम और शान्ति क्या दो है।
इसमें जो जब भेद करें।।
अज्ञ समझते महा विज्ञ हूँ।
दम्भी अपने दम्भ भरें ।।

जहाँ शान्ति है राम वहाँ है
जहाँ राम है शान्ति वहाँ
शान्ति, राम जो भिन्न समझता
वे पावेंगे शान्ति कहाँ?

बालि-पुत्र को भेजा मैंने
शान्ति रहे सीता आवे।
'प्राण बचावे छिपे तपस्वी
यहाँ न लंका में आवे'।।

तब फिर करना देर बुरा था
दनुज दण्ड से ही डरते।
इस अवसर पर किया राम ने
वीर तपस्वी जो करते।।

शान्ति छिपा गर विकट युद्ध में
राम उसे लाना होगा।
भय से हो भयभीत कैव्य वन
नहीं खोह जाना होगा।।

विकट रूण्ड-मुण्ड गिरे झुण्ड-झुण्ड
थर - थर नहीं करना होगा।
शान्ति खोज में पिता-पुत्र को
शीघ्र कुचल देना होगा।।

गुरु जन, परिजन अड़ जावे तो
उन्हें कुचल हँसना होगा।
हर-हर बम बोल-बोल
बजरंगवली कहना होगा।।

रक्त-नदी में रुण्ड-मुण्ड लख
खिल-खिल कर हँसना होगा।
माता को आदर्श मान कर
पड़े रक्त पीना होगा।।

अब जो यह पुष्पक-विमान है
जिस पर चढ़कर आये हैं।
बल पूर्वक रावण रखता था
जिसे कुबेर बनवाये हैं।।

मेरी छिपी हुई प्रकट में
माँ की इच्छा पूर्ण हुई।
अगर रही कुछ कमी कहीं
तो सच मेरी वह भूल हुई।।

इसलिये सब से पहले
माँ पद पर शीश नवाऊंगा।
माँ की आज्ञा को लेकर ही
और कहीं तब जाऊँगा।।

चले राम लक्ष्मण पीछेले
माता की आज्ञा लेने।
सीता और साथ सब साथी
चले सभी आशीश लेने।।

धीर

अथ ओऽम तत्सत ही प्रथम सर्वत्र वाचक बोललो।
तिथि मास सम्वत भी कहो निज कार्य क्षमता तौललो।।
रस व्योम् औ आकाश पख आश्विन शुक्ला पंचमी।
महतो सहित श्री रसिक लाल की लेखनी हूँ विक्रमी।।

भीष्मपुर(भिखनपुर) छ्यासी इकावन पंच विंशति पर नवीं।
पूर्व देशान्तर जहाँ अक्षांश उत्तर पर जमीं।।
अंग का वह अंग है बीच गंगा जहाँ जहनु मुनि।
देखो कपि-ध्वज फहरता आग्नेय पर नौ मील गनि।।

आरम्भ करने के प्रथम सोचो हजारों बार भी।
भयभीत क्यों आरम्भ कर ? आवे हजारों विघ्न भी।।
इस तत्व आराधक पथिक का गान करना है तुम्हें।
संकट घिरे रहते उन्हें क्या? भान कुछ भी है तुम्हें।।

है कार्य ऐसा कौन सा जो विघ्न बिन होते सुफल।
अति न्यून हों या विघ्न मय हो भिन्न गति का भिन्न फल।।
किस धातु का विधि ने बनाया है कलेजा धीर का ?
मन भी तनिक डीगता नहीं जग भर विपक्षी धीर का।।

विधि की बनाई कीर्तियों में धीर क्यों अपवाद है ?
या वृद्ध विधि ने विधि में की भूल की ही याद है।।
मिट जाय चाहे आज ही शत वर्ष भी जीना पड़े।
नित-नित हजारों गालियाँ विद्वान-मूर्खों की पड़े।।

संकट झमेले होड़ धर कर नित्य उनको घेरते।
मिट जाय तो मिट जाय पर मिटते बनाकर पेरते।।
फिर भी चुनौती विश्व को दें धीर हँसते झेलते।
न्याय पथ पर दृढ़ रहे ज्यों बाल क्रीड़ा क्रीड़ते।।

ऐसे अनोखे धीर थोड़े विश्व में होते रहे।
जगने उन्हें समझा नहीं बस गालियाँ देते रहे।।
था पूर्व कवियों के सुरों में सुर मिलाया है सभी।
तुक शब्द को थोड़ा बदल कर नाम पाया है सभी।।

तत्व को यद्यपि छिपाया है सभी ने जान कर।
या है जहाँ जो सत्य ही है पूर्वजों को मान कर।।
जो कुछ किसी ने है किया, वह है किया अपने लिये।
यह तत्व ही है धीर का नहीं, विचलते किसी के किये।।

घनघोर वर्षा भी अमावश रात को होती कभी।
विद्युत छटा को वह प्रभा बेजोड़ होती है तभी।।
सब ओर से सब यातनाओं बीच विचरण वे करें।
उपमा नहीं, उनको पता नहीं यातनायें क्या करें।।

पवि भी पिघलते, टूटते कण-कण बिखरते हैं सतत्।
विश्व का वह कौन धातु ? जो न दिखता क्षीण रत।।
हेम चांदी, लौह, शीशे पिघलते टूटते सदा।
विश्व के सब प्राणी भी नित्य रंग बदलते हैं सदा।।

पर धीर ही उपमा बिना बस एक रस रहते सदा।
नीती निपुण कुढ़ते रहें गर चुन लिया पथ एकदा।।
पथ चुनने में देरी होती यों अचानक ही नहीं।
सब कुछ बिछड़ जायें समर्थक भी बिछुड़ जाये कहीं।।

यह देह-देही भी बिछुड़ जाये उन्हें परवाह क्या ?
सौभाग्य, सम्पद, स्वजन, परिजन की वहाँ चिन्ता है क्या।
धीर वर प्रहलाद की स्तुति कहो कब है किया ?
पर यातनाओं के समय पिघली किसकी थी हिया।।

सफल होने पर अनेकों दाद देने आ गये।
त्राशक हिरण्यक से सखा हे त्राण मानो पा गये।।
इस देश भारतवर्ष में कुछ धीर ऐसे हो गये।
मोह वश उनको भुलाया या न पहचाने गये।।

किसी धीर को प्रणवीर कह सब दिन चिढ़ाना नही भला।
दम वेदम पर रख सके, यद्यपि दबाया था गला।।
आजाद और सुभाष को टटके भुलाया आपने।
विजय और यतीन्द्र की रही धीरता नही सामने।।

.....की क्या कथा पागल बनाया है जिसे।
हाँ एक कोटि पागलों की चाह रहती थी जिसे।।
प्रख्यात.....अभी तुम वीर उनको मानते।
क्या धीरता उनमें कभी जो ध्येय पथ नहीं छोड़ते।।

सरल

लोहे चने को भी चबाकर वीर बनना है सरल।
अश्वत्थामा द्रोण भीष्म को मार देना है सरल।।
कर्ण को भी मार कर के वीर बनना है सरल।
सप्त रथि से युद्ध करना भी अकेले है सरल।।

कुरू-जंग को भी फाड़ करके रक्त पीना है सरल।
धर्म राज को सत से डिगा दे कब हुआ किसको सरल?
है ताड़का मारीच सुबाहु को उड़ा देना सरल।
रावण सभा में भी अकेले पैर रखना है सरल।।

स्वर्ण मय लंका देना किसी को है सरल।
श्रीराम को वनसे घुमालें कब हुआ किसको सरल?
नित रक्त की धारा बहाकर वीर बनना है सरल।
उस वीर को एकबार में धूल में मिला देना सरल।।

त्रय लोक एक शब्द से ही दान करना है सरल।
मृत-पुत्र वाली पत्नी से पाना कफन क्या है सरल?
पर्वत वनों को लांघ कर के वीर बनना है सरल।।
खूंखार सिंह को श्वान वत पीछे घुमाना है सरल।

हाथी को छाती फुला कर भी उठा लेना है सरल।
सांडर्स को भी दिन दहाड़े मार देना है सरल।।
बेड़ियाँ पहने जलधि को लांघ जाना है सरल।
सशत्र पहरे बीच घुस कर गांधी को मारना सरल।।

वीर बनना सदा सर्वत्र ही सब को सरल।
सिद्धांत पर तिल तिलके मरना है कहां किसको सरल?
घण्टे मिनट के शौर्य से ही वीरता पाना सरल।
है अपमान औ अपवाद का सहना नहीं सब दिन सरल।।

घण्टे मिनट के मध्य दिखलाई सभी ने वीरता।
पर धीरता कितना कठिन है? है तुम्हें कुछ पता ?।।
वर्ण मात्र को बदल कर छंद रचना है सरल।
गुट मिल जाये तो कविवर भी कहा लेना सरल।।

अणु बम किसी का ले किसी पर भी गिरा देना सरल।
अणु बम, उड़न बम भी बना लेना किसी दिन हो सरल।।
जंगल वनों में खोह में छिप योग करना है सरल।
तरूणी, किशोरी संग, हिल मिल, ब्रह्मचर्य किसको सरल?।।

धीर किस पथ को चुनेंगे यह सदा अज्ञात है।
नीती निपुण भी भटकते होता न कुछ भी ज्ञात है।।
नीती निपुणता दम्भ में स्व अज्ञात नहीं लेखते।
धीर त्यों निज ध्येय तज कुछ भी न जग को लेखते।।

निन्दा औ स्तुति निपुण की सुख कर समझते हैं सदा।
लक्ष्मी बढ़े चली जाय चाहे वे सभी सौभाग्यदा।।
अवैध ही वा युगान्त में स्वयमेव मिट जाये भले।
पर बिचलते नहीं धीर जन जो न्याय पथ को मान ले।।

देश काल परिस्थिति जिन को बदल सकता नहीं।
धन्य हैं वे धीर नर मिलती न फिर उपमा कहीं।।
जिसने चुना जो पथ स्वयम् वह दूसरे में है नहीं।
भिन्नता दिखाती सभी से इसलिये उपमा नहीं।।

किस तरह किसने दिखाई धीरता कैसी कहाँ ?
प्रस्तुत कथा-प्रसंग पर कुछ उद्धरण रखदी यहाँ।।
गुन गुनाता मुग्ध करता चित अपना ही स्वयम्।
क्या करूं देखी सुनी का छन्द बन जाता स्वयम्।।

करता प्रथम प्रयास कभी जो उससे जो भूलों की भरमार।
कुटिल किसी को मैं न समझता, आशीष का सब दें उपहार।।